P: ISSN NO.: 2394-0344
E: ISSN NO.: 2455-0817
Remarking
Vol-III * Issue- I* June- 2016

स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास और दलित विमर्श

अर्चना मिश्रा
शोध छात्रा,
हिन्दी विभाग,
डॉ0रा0म0लो0 अवध विश्वविद्यालय,
फैज़ाबाद, (उ0प्र0)

सारांश

प्रथम स्वतंत्रता संग्राम पूर्व से चली आ रही अंग्रेज़ों की दमनकारी नीति और उत्पीड़न के सन्दर्भ में ही राजनीतिक नवजागरण का अंकुरण भारतीय जनमानस में सन् 1857 ई0 में गदर के रूप में होता है। राजनैतिक संगठन के साथ–साथ सामाजिक और सांस्कृतिक धरातल पर उदय होने वाले विशिष्ट संघटनों से सम्बद्ध युग पुरूषों की प्रेरणा से प्रभावित सामान्य जन–जीवन में राजनैतिक चेतना की परिव्याप्ति ने समग्र राष्ट्रीय जीवन को अपूर्व गतिविधि प्रदान की। पाश्चात्य देशों में उदित साम्यवादी और सामाजिक दर्शन के क्षिप्रगतिक प्रसार और प्रचार ने भारतीय दलित के मानस को अपनी उग्रवादी विचारधाराओं से पूर्णतः आन्दोलित किया। स्वतन्त्रता पूर्व निर्धारित लक्ष्य प्राप्ति के पश्चात् सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक धरातल पर समत्व की प्राप्ति के लिए दलित वर्ग ने इसकी प्रतिबद्धता स्वीकार की।

मुख्य शब्द : कृषि,व्यवसाय,विद्रोह,चेतना,यर्थात,ऋण,प्रजातंत्र

प्रस्तावना

स्वतन्त्रता पूर्व और पश्चात् की राजनैतिक गतिविधियों को प्रतिबिम्बित करने वाली 'रेणु' की प्रथम आंचलिक कृति 'मैला आँचल' में विभिन्न राजनैतिक दलों से प्रतिबद्ध दलित वर्ग का सहज और स्वाभाविक प्रत्यंकन हुआ है। 'दलित' पद निर्विवाद रूप से परिभाषित नहीं है परन्तु सामान्यतः परम्परागत वर्ण व्यवस्था में शूद्र और पंचम वर्ण के अन्तर्गत आने वाले समुदाय को जो सवर्णों द्वारा अस्पृश्य माना जाता रहा है, 'दलित' कहा जाता है। इनमें आदिवासी वर्ग भी सम्मिलित हैं। इन जातियों के जिन लोगों ने इस्लाम या ईसाई धर्म स्वीकार किया है, वे भी 'दलित' वर्ग में ही शुमार किये जाते हैं। 'नवजागरण' की अवधारणा में 'दलित' समुदाय के उत्थान का भाव भी शामिल था पर सनातन धर्मी वर्णाश्रम व्यवस्था के समर्थक इसके पक्ष में नहीं थे। फणीश्वरनाथ 'रेणु' ने भी 'मैला आंचल' (1954) में पूर्णिया अंचल के दलित जीवन के चित्रण में गहरी संवेदनशीलता का परिचय दिया है। उपन्यास के 'मेरीगंज' को आधुनिक जागरूकता प्रदान करने में विभिन्न राजनैतिक दलों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। 'मेरीगंज' जातियों के आधार पर अनेक टोलों में बँटा हुआ है। इनमें से कुछ टोले दलित जातियों और आदिवासियों के हैं जो अत्यन्त गरीब, अशिक्षित, अन्धविश्वासी और बौद्धिक दृष्टि से पिछड़े हुए हैं। सवर्ण जातियों के लोग इनका शोषण करते हैं। 'रेणु' ने दलित जातियों के जीवन के सहानुभूतिपूर्ण अंकन के साथ–साथ उच्च जातियों के विरूद्ध इनके विद्रोह का भी चित्रण किया है। ''कांग्रेस पार्टी का व्यापक प्रभाव शनैः–शनैः क्षीण हो रहा है। बालदेव और वामनदेव की गाँधीवादी अहिंसात्मक नीति साधारण जनों की युगधर्मी हिताकांक्षा का विस्मरण करती जा रही है, और वर्ग विशेष अपनी मोहभंग की स्थितियों को स्वीकारते हुए दूसरे दलों से प्रतिबद्ध होने के लिए बाध्य हो रहे हैं। गाँधी जी के नाम पर भूखे बच्चों का पेट काट कर, दलित वर्ग परिवर्तित परिस्थितियों में समाजवादी दल और उसके नेता कालीचरन से प्रतिबद्ध होता दिखाई पड़ता है।''[1] शादियों से उपेक्षित दलित और शोषित समाज में स्वत्वबोध की लहर इतनी तीव्रता से आती है वे किसान मज़दूरों के नये राज की कल्पना का साकार स्वरूप कालीचरण के भाषण में देखने लगते हैं।

उपन्यासकार दलीय प्रतिबद्धता का प्रखर आलेखन कालीचरन उसके दल और दलित सन्दर्भ में प्रस्तुत करता है। गाँव में होने वाली सभा में कालीचरन का ओजस्वी वक्तव्य दलित वर्ग में गूंजने लगती है। ''यह जो लाल झंडा है आपका झंडा है, अवाम का झंडा है, इन्कलाब का झंडा है। इसकी लाली उगते हुए आफताब की लाली है, यह खुद आफताब है। ..... यह महरूमों, मज़लूमों, मजबूरों, मज़दूरों के खून में रंगा हुआ झंडा है.....जमीनों पर किसानों का क़ब्ज़ा होगा। उठो किसानों, किसानों के सच्चे सपूतों। धरती के सच्चे मालिकों उठो। क्रांति की मशाल लेकर आगे बढ़ो।''[2] रेणु' ने दलित वर्ग की प्रतिबद्धता का यथास्थिति चित्र रूपायित किया है। राजनीतिक दाँव–पेंच में

असहाय दलित वर्ग विभिन्न दलों से प्रतिबद्ध हो रहा है, किन्तु उनके हितों की रक्षा का सबल माध्यम कहीं भी दृष्टिपथ में नहीं आ रहा है।

राजनैतिक विपथगामिता से संत्रस्त दलित का सजीव चित्रण नागार्जुन के 'बलचनमा' और 'बाबा बटेसरनाथ' में उभरा है। 'बलचनमा' अपनी राजनीतिक प्रवेशावस्था में इस दल के प्रति पूर्ण आस्था और विश्वास से प्रतिबद्ध होकर सोचता है कि ''मैंन सोचा मुलुक से अंग्रेज़ बहादुर चला जायेगा फिर यही बाबू भैया लोग अफसर बनेंगे और तब इस बाबा जी महाराज का भी उद्धार हो जायेगा। इसके हाड़ों पर मांस चढ़ेगा चेहरे पर चिकनाई आयेगी। बूढ़ा हो जाने पर पढ़ गुन तो क्या सकेगा–मगर बाकी आराम सुमिस्ता इस रसोइये को भी मिलेगा।''[3]

रामदरश मिश्र, भैरव प्रसाद गुप्त, शिवप्रसाद सिंह तथा धूमकेतु की कृतियों में क्रमशः कांग्रेस, सोशलिस्ट और साम्यवादी दलों से प्रतिबद्ध होते दलित वर्ग की प्रतिबद्धता का चित्रांकन हुआ है।

प्रख्यात कथाकार शिवप्रसाद सिंह की ''अलग–अलग वैतरणी'' में नैतिक शोषण की पृष्ठभूमि में पराभूत दलित की वस्तुस्थिति और नेताओं की घृणित मनोवृत्ति का दृश्य उपस्थित है। 'करैता' में असवर्णों के बटोर में मज़दूर संघ के प्रख्यात नेता लच्छीराम, रामकिशुन के चलने के आग्रह पर कहते हैं कि ''पर हमारी फीस तो आप जानते ही है ? वकील, डाक्टर, वैद्यों की फीस के उपरान्त इस नई फीस के विषय में इस असवर्ण नेता का अपनी ही जाति बिटोर के लिए दिया गया स्पष्टीकरण कितना घृणास्पद है ..... कि पचास रूपये से कम पर मैं नहीं जाता ऐसी बटोरों में, कुछ घट गया तो अखबारों में नाम तो मेरा ही छपेगा। बदनामी मेरी होगी। ऐसी हालत में इधर–उधर लोगों को पानपत्ता के लिए कुछ चाहिए कि नहीं।''[4] मामला तीस रूपये पर पट गया।

भ्रष्ट अफसरशाही के प्रत्यक्ष विरोध में असमर्थ दलित की वैचारिकता में प्रबल विद्रोहाग्नि धधक रही है। 'सूरज किरन की छांव' का सामान्य ग्रामीण कहता है कि ''सारे अफसर खींखा भरते हैं, डास को चूसते हैं, कहते हैं आज़ाद हुए हैं।''[5]

'पानी के प्राचीर' में हरिजन नारी 'बिंदिया' के प्रति अपने अधिकारों का घृणित दुरूपयोग करने वाला दरोगा भारतीय प्रशासन की अक्षमता का प्रमाण प्रस्तुत करता है। अक्षम नौकरशाही का ज्वलंत उदाहरण 'वरूण के बेटे' में मिलता है। निषाद जाति के आपदाग्रस्त जीवन की सहायता के लिए मछुवा संघ की ओर से भेजे गये लिखित मेमोरेंडम पटना और दिल्ली के महायुभुओं का ध्यान आकर्षित करने में अक्षम रहते हैं।

जन–जन के कल्याण का गाँधी जी का स्वप्न 'जल टूटता हुआ' में अधूरा ही रह जाता है। उपन्यासकार इस दुरवस्था को इन शब्दों में उपन्यस्त करता है कि ''गांधी जी सत्ता, उद्योग और सुविधा इन सबका विकेन्द्रीकरण कर गांवों में बिखेर देना चाहते थे लेकिन उनके उत्तराधिकारी नेता लोग गांवों को दूर कर केन्द्रों को सजा रहे हैं।''[6]

सत्ता के केन्द्रीयकरण ने जहाँ समृद्धिशाली व्यक्ति की समृद्धि में गुणात्मक परिवर्धन किया है, दलित वर्ग हर क्षेत्र में नित्य प्रति अकिंचनता को प्राप्त करता जा रहा है। रामदरश मिश्र ने अपनी कृतियों में शासन सत्ता, नेता, भ्रष्टाचार और युगधर्मी ह्रासमान प्रवृत्तियों का राजनैतिक परिप्रेक्ष्य में यथार्थ विश्लेषण कर दलित वर्ग की दयनीयता को सुस्पष्ट किया है।

भारतीय राजनीति को सर्वाधिक क्षति और आघात पहुंचाने वाले वर्णभेद और तज्जन्य वर्ग भेद की प्रवृत्ति का सूक्ष्म और सजीव अंकन 'रेणु' की 'परतीः परिकथा' में उपन्यस्त है। प्रमुख जननेता 'लुत्तों' अपने जोशीले भाषण में इस युगधर्मी विघटनशील प्रवृत्ति को प्रश्रय देता हुआ कहता है कि ''एक भी गरीब भाई के खिलाफ गवाही नहीं देगा..... धोबी, चमार, नाई, बढ़ई और खवासों को विशेष रूप से संगठित होने को कहा है सभापति जी ने।''[7]

विभेदमूलक राजनीतिक परिवेश में घोर जातीयता के मध्य पिसती हुई परबतिया का यह कथन उसकी विवशता ध्वनित करता है–''हाय रे इस जांत–पांत के झगड़े में तो मेरा बुरा हाल हो रहा है।''[8]

स्वातन्त्र्योत्तर उपन्यासों में बहुत कम ऐसा हुआ है कि राजनीति से पृथक कर दलित वर्ग के मूलभूत बिन्दुओं को व्यापक रूप से अंकित करने की चेष्टा की जाय। उनकी समस्याओं का एक मात्र हल राजनीतिक दल के रूप में व्याख्यायित हुआ है। एक दृष्टि से यह उचित ही है क्योंकि लोकतन्त्र में राजनीति से रहित सामाजिक और आर्थिक समस्याओं का हल बहुत कठिन है। प्राचीन काल में जो कार्य समाज सुधारकों ने किया वही कार्य आज राजनीतिज्ञों के सिर पर है। प्रश्न राजनीतिक दिशाओं की है। सम्प्रति आधुनिक उपन्यासों में दलित वर्ग की समस्याओं का हल गांधीवाद से सम्भव होता न देखकर साम्यवाद और उससे लगे विभिन्न वामपंथी कार्यक्रमों में उभार पा रहा है।

शोषण और दमन के प्रतिकार में ग्रामीण दलित वर्ग में अंकुरित भावनाओं को राजनैतिक सन्दर्भों ने विकसित होने में योगदान किया है। डॉ0 विवेकी राय सम्भवतः इसे ही लक्ष्य कर अपना अभिमत प्रस्तुत करते हैं– ''गांवों में राजनीतिक उन्मेष का परिणाम ही वर्ग–संघर्ष है।''[9] आहत, अशक्त 'बलचनमा' की भावनात्मक क्रांति का यह उद्घोष कि ''धरती किसकी? जोते–बोये उसकी! किसान की आज़ादी आसमान से उतर कर नहीं आयेगी, वह परगट होती है– नीचे जुती धरती के भुरभुरे ढेलों को फोड़कर.....।''[10] सर्वहारा वर्ग के अनुभूत्यात्मक संघर्षों की यह प्रामाणिक व्यवस्था उनकी भावक्रांति की सशक्त योजना कर प्रखर रूपांकन करती है। उपन्यासकार इस पात्र के माध्यम से अपने प्रगतिशील विचारों का निदान प्रस्तुत करता है।

नागार्जुन की कृति 'बलचनमा'' में बलचनमा का समग्र व्यक्तित्व समाजवादी जीवनदृष्टि से समन्वित है। दलित जीवन के विसंगतियों के निवारण के लिए वह सोचता है कि बाबू भैया की तरह ही उन्हें भी संगठित होकर अन्याय, शोषण और दमन का प्रतिशोध करना पड़ेगा। 'बलचनमा' की अन्तश्चेतना आर्थिक स्तर पर समानता का आह्वान करती है।

अमृतलाल नागर का 'नाच्यो बहुत गोपाल' समस्त हिन्दी उपन्यास में अपने ढंग का विशिष्ट उपन्यास है। समाज के दलित वर्ग का थोड़ा–बहुत चित्रण नागर

जी के पहले भी प्रेमचन्द, पाण्डेय वेचन शर्मा 'उग्र', ऋषभचरण जैन आदि के उपन्यासों में हो चुका था परन्तु भंगी जीवन का इतने बड़े पैमाने पर चित्रण इसके पहले नहीं हुआ था। सामन्ती ब्राह्मण संस्कारों से मुक्त होकर भंगी समाज के जीवन की वास्तविकताओं और संस्कारों से संवेदनात्मक स्तर पर जुड़ने का नागर जी का प्रयास अद्वितीय है। इसके लिए उन्होंने न केवल भंगी समाज के इतिहास का अध्ययन किया अपितु इस समाज के व्यक्तियों के लम्बे–लम्बे इण्टरव्यू लेकर और उनके निकट सम्पर्क में आकर उनसे भावनात्मक स्तर पर एकाकार होने का प्रयत्न किया है। इसके फलस्वरूप नागर जी ने इस समाज का ऐसा प्रामाणिक और मार्मिक चित्रण किया है जो हिन्दी उपन्यास में बेमिशाल है।

इस उपन्यास में नागर जी ने भंगी जीवन की नारकीय वास्तविकताओं को एक और आयाम से जोड़कर उसे तल्ख बना दिया है। भंगी जाति की ऐतिहासिक वास्तविकता यह भी है कि युद्धों में विजयी जातियों ने पराजित जातियों को भंगी कर्म करने के लिए विवश किया था। इस विवशताजन्य नारकीय अनुभव के अंकन के लिए नागर जी ने 'निर्गुनिया' की कथा कल्पित की है जो जन्मना ब्राह्मण कन्या होकर भी अपनी दुर्दमनीय काम भावना के कारण एक भंगी युवक से प्रेम करती है और उसके साथ भाग जाती है। उसके ब्राह्मण से भंगी में रूपान्तरण तथा सामाजिक शोषण और अपमान की जिस प्रक्रिया और परिणति का साक्षात्कार होता है वह अत्यन्त वीभत्स, भयानक और अमानवीय है जिससे गुजरना पाठक के लिए नितान्त नया अनुभव है यह अनुभव इस कारण और भी तल्ख हो जाता है कि निर्गुनिया का शोषण एक दलित का ही नहीं, बल्कि एक नारी का शोषण भी है।

शैलेष मटियानी ने 'कोई अजनबी नहीं' में दिल्ली की गन्दी बस्तियों में नारकीय जीवन बिताने वाले दलितों का चित्रण किया है। मटियानी मुख्यतः दलित विमर्श के उपन्यासकार है जिनमें नारी और दलित वर्ग की मुख्य भूमिका है। मटियानी के उपन्यास 'सर्पगन्धा' का मुख्य विषय पर्वतीय क्षेत्र का दलित समाज है जो अपने अधिकार की लड़ाई लड़ रहा है। मटियानी ने इस संघर्ष और इससे जुड़े आरक्षण के प्रश्न पर बहुत ही विवेक और निर्भीक चिन्तन का परिचय दिया है। आरक्षण के प्रश्न को मटियानी ने तर्कपूर्ण चिन्तन तथा गहरी संवेदना के साथ प्रस्तुत किया है।

'रांगेय राघव का उपन्यासकार के रूप में यश मुख्यतः 'कब तक पुकारूँ' पर आधारित है। इस उपन्यास में करनट कबीलों के जीवन यथार्थ के अनेक पक्षों निर्धनता, खानाबदोशी, स्वच्छन्द जीवन–शैली, एक विशेष प्रकार की संस्कृति, ब्रिटिश शासन में जरायम पेशा जाति के रूप में उपेक्षित जीवन जीने की विवशता, पुलिस द्वारा किये जाने वाले अत्याचार, उनकी स्त्रियों के यौन शोषण आदि का अत्यन्त यथार्थ एवं मार्मिक चित्रण किया गया है। उपन्यासकार ने नटों के साथ चमारों और भंगियों की जीवन कथा जोड़कर उसे और भी व्यापक आयाम दिया है। इस प्रकार पूरा दलित वर्ग इस उपन्यास के कथ्य की परिधि में आ गया है, जिसकी गरीबी और विवशता का ही नहीं उसके अन्तर्विरोधों तथा व्यवस्था और शासन के प्रति पनपने वाले विद्रोह का भी अंकन उपन्यासकार ने किया है।

जमींदार किसानों की गरीबी का पूरा लाभ उठाकर उसका शोषण करते हैं।'' आदमी के खून का चस्का लग जाने पर घड़ियाल की जो हालत होती है, वही हालत जमींदारों की है। यही कारण है कि वे किसानों से उस जमीन से लगान लेते हैं, जिन पर उनका कोई अधिकार नहीं है।''[11]

गिरिराज किशोर के 'यथा प्रस्तावित' उपन्यास में दलितों, शोषितों के प्रति अमानवीय व्यवहार किया जाता है, उसका चित्रण किया गया है। उच्च वर्ग के अधिकारी से त्रस्त 'बालेसर' पागल हो जाता है। लेखक ने जातिवाद को गंभीरता से चित्रित करके अस्पृश्यता, त्रास–जुल्म पर विशेष प्रकाश डालकर दलित चेतना पर बल दिया है। गिरिराज जी ने अपने उपन्यास 'परिशिष्ट' में भी दलितों की समस्याओं का चित्रण किया है।

जगदीश चन्द्र के उपन्यास 'धरती धन न अपना' (1972) में पंजाब के होशियारपुर जिले के घोड़ेवाहा जिले के चमार अनेकविध यातनाओं के शिकार हैं। घृणा, उपेक्षा, अवमानना आदि का हृदयद्रावक चित्रण इस उपन्यास में है।

डॉ0 विवेकी राय के 'बबूल' उपन्यास में पूर्वी उत्तर प्रदेश के सर्वाधिक दीन–हीन, उपेक्षित और निराश्रित हरिजन मज़दूरों की यातनाओं और समस्याओं का ठोस चित्रण है।

नागार्जुन के उपन्यास 'बलचनमा' में बलचनमा का विद्रोह न केवल रोटी का समस्यान्त चाहता है वरन् मानवीय अधिकारों का समत्वपूर्ण संस्थापन का प्रारूप उपस्थित करने के लिए आजीवन संघर्ष वृत्ति को अपनाये रखता है। नागार्जुन की अन्य कृतियों 'वरूण के बेटे' और 'बाबा बटेसरनाथ' में भी सामाजिक मूल्यों का नवीन उद्घाटन होता है।

'मैला आंचल' में डॉ0 प्रशान्त से अपने अधिकारों की परिभाषा ज्ञात होने पर संथालों और भूपतियों में संघर्ष छिड़ जाता है और इस संघर्ष में अपूरणीय क्षति उठाते हैं। ये निरीह, अबोल प्राणी जो विवशता की सीमा में सिसकते रह जाते हैं। भावों की व्यापकता को बिम्ब, प्रतीक और ध्वनिमयी शब्द यन्त्रों की सहायता से पूर्ण उभार देने वाले 'रेणु' ने जनवादी चेतना तथा संघर्ष की प्रभावकता का सूक्ष्म और सुष्ठु अंकन विभिन्न टोलियों के प्रदर्शन में अंकित किया है।

उद्देश्य

शोध छात्रा,'' स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासो की राजनीतिक चेतना'' विषय पर शोध कार्य कर रही है। उक्त शोध विषय के अध्ययन की प्रक्रिया में ही यह शोधपत्र को प्रस्तुत किया गया है।

निष्कर्ष

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि चाहे ग्रामीण दलित हो या शहरी दोनों के विकास हेतु स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास अग्रणी भूमिका निर्वाह कर रहा है। 'लोहे के पंख' का श्रमिक दलित 'मगरू' स्वयं को गांधी और गांधी जी को पार्टी कांग्रेस से प्रतिबद्ध कर कहता है कि ''जो आदमी गांधी बाबा के दल में जाता है, उसकी सारी बुराइयां दूर हो जाती हैं।''[12]

''किन्तु दयानाथ और बड़ोदकर बाबू जैसे नेताओं का अवसरवादी मुखौटा उतर जाने पर यही लोग इनकी झंडावरदारी को कबूल करने के लिए अब तैयार नहीं हो रहे थे।''[13]

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. 'मैला आँचल'– 'रेणु' पृष्ठ–163
2. 'मैला आँचल'– 'रेणु' पृष्ठ–109
3. 'बलचनमा'–नागार्जुन पृष्ठ–164
4. 'अलग–अलग वैतरणी'– शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ–603
5. 'अलग–अलग वैतरणी'– शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ–603
6. 'सूरज किरन की छांव'– राजेन्द्र अवस्थी, पृष्ठ–83
7. 'जल टूटता हुआ'– रामदरश मिश्र, पृष्ठ 462
8. 'परतीः परिकथा'– फणीश्वरनाथ 'रेणु', पृष्ठ–78
9. 'स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कथा साहित्य और ग्राम जीवन'–डॉ0 विवेकी राय, पृष्ठ–221
10. 'बलचनमा'– नागार्जुन, पृष्ठ–200
11. 'गंगा मैया'– भैरव प्रसाद गुप्त, पृष्ठ–30
12. 'लोहे के पंख'– हिमांशु श्रीवास्तव, पृष्ठ–164
13. वही–पृष्ठ–290